चातुर्मासका महत्व

अर्थात्

जैन संघके

चातुर्मास कैसे होने चाहिये ?

लेखक

काशी निवासी विद्यालंकार पं० यतिवर्य

श्रीहीराचन्द्रजी महाराज

प्रकाशक

अजिमगंज निवासी

श्रीमान् राजा विजयसिंहजी दुधोरिया

सन् १९२४

प्राचीन कालमें चातुर्मासका माहात्म्य अत्यन्त मनाया जाता था। उस कालके लोग चातुर्मासके वास्तविक रहस्यको खूब अच्छी तरह समझते थे। व लोग इन चार महीनोंमें विदेश-यात्रा सर्वथा त्याग कर देते और यथा समय वाणिज्य व्यवसायको छोड कर प्राय धर्म-कार्य ही किया करते थे। उपाश्रय जाकर यति-मुनियोंका धर्मोपदेश श्रवण करते और दृढ भक्तिके साथ उनकी परिचर्या कर अपनेको कृत-कृत्य मानते थे। पर्वके दिन पोषध-शाला जाकर सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध, देववदन आदि धार्मिक क्रियायें बडी श्रद्धाके साथ करते और अपनी शक्तिके अनुसार प्रभावनाएँ करते थे। शुभ पर्वके उपलक्षमें स्वामि-वत्सल एव उद्यापन आदि अनेकानेक शुभ कार्य करते थे।

वर्तमान समयमें अपनी जैन समाज प्राय इस विषयसे अनभिज्ञसी हो रही है। बहुतसे जैन भाइयोंको इन साधारण

बातोंका भी ख्याल नहीं है, कि चातुर्मासके समय अपने कौन-कौनसे पर्व आते हैं? अपने धर्म-शास्त्रोंमें इन चार महिनोंके लिये क्या माहात्म्य बतलाया है? अन्य आठ महीनोंकी अपेक्षा इन चार महिनोंका माहात्म्य किस लिय अधिक वर्णित हुआ है? इन दिनोंमें जो महापर्व आते हैं, उनकी विशेष अराधना किस लिय की जाती है? इन बातोंका यथेष्ट ज्ञान शायद ही किसी श्रावकको हो।

प्रस्तुत पुस्तिका लिखकर प्रकाशन करवानेका यही उद्देश है, कि आबाल, युवा, वृद्ध और वनिता सब किसीके चित्तमें चातुर्मासकी महत्वताके भाव उदित हों, एवं जैन समाजमें चातुर्मासका माहात्म्य पूर्ववत् मानाया जाये। आशा है, हमारे प्रेमी पाठक सप्रेम इस पढ़ कर चातुर्मासके वास्तविक कर्त्तव्योंको समझते हुए व्यवहारमें परिणत होनेकी कृपा करेंगे और अपने प्रेमी मित्रवर्गमें भी इसका प्रचार करेंगे। अगर प्रेमी पाठकोंने इससे जराभी लाभ उठाया तो हमारा और प्रकाशक महाशयका परिश्रम सफल समझा जायेगा। अस्तु,

इस पुस्तकके प्रकाशनका भार अजीमगज-निवासी परम श्रद्धास्पद् श्रीमान् राजासाहब विजयसिंहजी दुधोरिया

ने लेकर इसे प्रकाशित करवाया है, एतदर्थ राजासाहबको भूरि-भूरि धन्यवाद है। राजासाहबका ज्ञानानुराग परम प्रशसनीय एव अनुकरणीय है। अपनी जैन समाजके धनवान् पुरुषों में ज्ञानानुराग बहुत ही कम है, पर राजासाहबका ज्ञानानुराग बहुत ही प्रशसनीय है, आपको धार्मिक पुस्तकें आलोचन करनेका बडाही प्रेम है, आपका धर्म-प्रेम, जाति प्रेम, एव देश-प्रेम अतीव प्रशसनीय है। आप बडे भारी धनवान् और जमींदार हैं, जैन समाजमें आपकेसे पुरुष विरले ही हैं। प्राय लक्ष्मी पाकर लोग उन्मत्त हो जाते हैं पर आपमें यह बात सर्वथा नहीं पाई जाती, आप बडेही विनयी हैं।

आशाहै, राजासाहबकी तरफसे अन्यान्य और भी उत्तमोत्तम पुस्तकें आप सज्जनोंकी सेवामें समय पर भेंट की जायेंगी।

निवेदक—

यति हीराचन्द्र

पेमोपहार
श्रीयुक्त

प्रेमोपहार
श्रीयुक्त
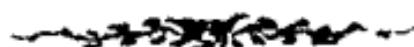
पढ़ो । मनन करो ।। और प्रवृत्त हो ।।।

* श्री *

जैन संघके

चातुर्मास कैसे होने चाहियें ।

रत्नं रत्नाकरान्तर्गतमिव सततं दुर्लभो यो भवाब्धौ,
लब्धे यस्मिन्नकस्मात् त्रुटति तनुभृतां दुर्गतिभ्रान्तिभीतिः ।
सम्पद्यन्ते हि सद्यो यत इह विभवाः शक्रचक्राधिपानां,
मूलं निर्वाणलक्ष्म्याः स भवतु भवतां धर्मराट् जैनधर्मः ॥१॥

भावार्थ —रत्नाकरमेंसे जैसी रत्नकी प्राप्ति होनी दुष्कर है, उसी तरह संसार समुद्रमें इस पवित्र जैन धर्म रूपि रत्नकी प्राप्ति होना कठिन है, जिसके पानेसे तुरत जीवोंके अनेक योनियोंमें होनेवाले जन्म-जरा मरणादि दूर छूट जाते हैं और तुरत अनेक तरहके इन्द्रपद चक्रवर्तीके पदादि विभवकी प्राप्ति होती है और जिस धर्मका मूल मोक्ष लक्ष्मीका कारण है । वह पवित्र जैन धर्म

आप लोगोंको सदा सुखकारी हो और सदा इस धर्मके प्रभावसे आप लोगोंका अभ्युदय होता रहो ?

वर्षाकाल का समय भी क्या ही सुन्दर है, जिसके आने पर ग्रीष्मकालसे ग्रस्त अनेक चराचर प्राणीयोंके आनन्दकी सीमातक रहती नहीं। जिधर देखिये उधरही हरियाली ही हरियाली दिखाइ देने लगती है जो नदी नाले एक दिन शुष्क हो रहे थे वेही आज जलसे पूर्ण भरे हुए अपनी अपनी मस्तानी चालसे किसीको कुछ नहीं समझते हुये, अनेक वृक्षादिकों को उन्मूलन करते हुए प्रवाहित होने लगते हैं, ठीक ही है, तुच्छपात्र अल्पलक्ष्मीके पानेसे मत्त होही जाता है, और दूसरोंके उन्मुलन करनेमें ही अपने को धन्य धन्य समझता है एक कविने कहा है—

श्रीमंतोंको लक्ष्यकर नदीके दृष्टान्तसे

यास्यति जलधरसमय
स्तत्रापि वृत्ति र्लघीयसी भावी
नटिनि। तटद्रुमपातात्
पातिकमेक चिरस्थायी ॥१॥

भावार्थ—हे नदि ! वर्षाकालका समय चला जायगा और भविष्यमें वही स्थिति फिर होने वाली है जो कि ग्रीष्मकाल के समय थी। केवल इस तेरा उन्मत्ततासे ही दोनो इस तर तटों पर रहे हुए उन असहाय गरीब वृक्षों के उखाड डालनेका पाप

ही तेरे लिये चिरस्थायी कलक रह जायगा—अर्थात् लोग यही कहेंगे कि, बढी हुई इस नदीने ही इन वृक्षोंको उखाड़ा है। यह चिरस्थायी कलक न हो इसलिए धीरी बह, उ मत्त होने में यश नहीं है।

अस्तु—कृषक वर्गके आनन्द का तो क्या पार है, स्थानमें स्थानमें मेडक (दर्दुर) गण अपने आनन्दालापोंसे मानो वर्षा का स्वागत ही कर रहे हों-इस तरह मस्त हो हो कर बोलने लगते हैं प्रवासी पथिक भी अपने अपने घरकी तरफ रवाना होने लगते है। अहा हा! वर्षाकाल क्या है, माना दु खित प्राणियोंके आनन्दका एक असाधारण कारण है। इधर स्थान स्थान नगर-नगरके जैन सघोंमें भी विशेष धार्मिक आनन्द प्रसरने लगता है। अनेक भव्यात्माओंके हृदय व्रत तपस्या आदि धर्म कृत्योंके करनेमें विशेष उल्लसित होने लगते हैं। जैसे चातक स्वाती बूदकी प्रतीक्षा करता है उसी मुजब स्थान स्थानके जैन सघ भी पूज्य मुनिगणके आनेकी प्रतीक्षा करते रहते हैं, या अन्य स्थानोंसे सविशेष आग्रह पूर्वक मुनिगणको अपने अपने क्षेत्रोंमें लाकर तीर्थंकर प्रणीत आगमरी सुननेके लिये परम उत्सुक रहते हैं, इधर नवकल्पी विहार करनेवाले महात्मा मुनिगण भी अपने अपने योग्य क्षेत्रोंको देखकर चातुर्मास रहने लग जाते हैं, एव च स्वाध्याय ध्यानमें रहते हुये भव्यात्मा श्रावक वर्गको भी प्रति दिन उपदेशामृतोंसे तृप्त करते हैं और उनसे अनेक धार्मिक कार्यों

को कराते हुवे पर्यूषण पर्वकी शोभा भी अपूर्व बढाते हैं, क्योंकी
यह पर्वही ऐसा है कि जो कभी भी उपाश्रयके मुखतक देखते
नहीं वे भी उत्साह पूर्वक गुरू सेवामें हाजिर हो जाते हैं इस
अलभ्य समयमें प्राय सर्वत्र धर्म गुरुओका भी सयोग अच्छा
मिलता है, क्यों कि चातुमासमें आचार्योंका तो क्या कहना
किन्तु साधारणसे साधारण मुनि यति भी बहोत ही आदरणीय
हो जाते हैं, और वे भी पर्वके पास आनेसे अपने प्रमादको छोडकर
विशेष धार्मिक कार्योंमें यत्नवान् होते हैं यह पर्वही ऐसा है कि
कैसाही प्रमादी क्यों नहो वह भी जागृत हो ही जाता है,ज्यों ज्यों
पर्व पर्यूषण पासमें आते हैं त्यों त्यों श्रावक श्राविका वर्गमें भी
अपूर्व धार्मिक भावनायें लहराने लगती हैं, जो कि अन्य समयमें
अलभ्य हैं, पर्वका उद्देश्य भी यही है कि साल्भरके कषायोंसे
कलुषित हुई आत्मा को तप सयम आलोयणादिसे क्षालन कर
अन्त करण को शुद्ध बनाय लेना व आपसी झगडों को तोडकर
निःशल्य वृत्तिसे क्षमत क्षामणा कर व भविष्यमें सप्रेम प्रवृत्त
होना ही है इन कषायोंके कटुफल भवान्तरमें न लगे व कषायोंके
विवश ये संसारी जीव दुखी न हो इसी भाव दया के कारणही
अनंत तीर्थङ्करोंने पर्यूषण पर्वकी स्थापना की है इसीलिये सात
...न प्रथमसे ही मुनिवर्ग श्रावक समुदायको संसारके स्वरूप
... विषमता, मोक्ष विषयक सुख व उनके उपाय इत्यादि
... हेतु दृष्टान्तादिसे अच्छी तरह समझाते हुए उन पूज्य
... अलौकिक आदर्श भूत जीवन चरित्रोंको सुनाते हैं

जिससे श्रावक वर्गको अपने कर्तव्य पथका अच्छी तरह दिग्द-र्शन हो जानेसे शिघ्रही उनकी धर्मके विषयमे उत्कट अभिरुचि पैदा होती है और उनके अन्त करण भी शुद्ध व सरल हो जानेसे नि शल्य वृत्ति से क्षमन क्षामणा पुर्वक सावत्सरिक प्रतिक्रमण करते हैं, यही प्रवृत्ति मुनिवर्ग की भी है जिससे सघमें सबकी वृद्धि व एकता का अविच्छिन्न प्रवाह बहने लगता है।

अहा! हा! हा! यह पर्यूषण पर्व क्या है, वस्तुत एकता व प्रेमोत्पत्तिका एक असाधारण कारण हैं, इससे ही इसको पर्वाधिराज कहते हैं और जैनोमें इसका आदरभी जैसा चाहिये वैसाही है, जिस समाजमें एकता व परस्पर सपका अविच्छिन्न प्रवाह बहता हो वह साधारणसे साधारण भी समाज क्यों न हो किन्तु अल्पही समयमे वही उन्नत समृद्ध व ससारमें आदर्श भूत हो जाता है, इसमे कोई आश्चर्य नहीं है, पूर्व समयमें इसी एकताके तन्तुओंसे बंधे हुवे जैन सघका जो अन्यो पर प्रभाव पडता था एवं च एकताके कारण ही उन जैनोने नैतिक व्याव-हारिक धार्मिकादि अनेक विषयोंमें जो अपनी उन्नतिकी थी जिस से ही उनका जो संसारमे गौरव था या अनेक उनके प्रतिस्पर्धि योंके रहते हुवे भी सदा ससारमें अजेय बने रहे—उसी तरह उनके पूज्य मुनिगणोका भी सघटनात्मक शक्तिके कारण व उनके उदात्त चारित्रके प्रभावसे जो संसारमें उनका मान था एव च जिनके चरणोंमें बढे बढे सम्राट भी अपने मस्तकोंको रखते हुवे लेश मात्र भी हृदयमे संकुचित न होकर प्रत्युत अपनेको धन्य-

हिष्णुता आदि दुर्गुण बढे चढे हैं, कि एक मुनि दूसरे मुनि के उपाश्रयमें उतरना नहीं चाहते या कोई सद्गुणी महात्मा उस क्षेत्रमें आजाय तो प्रथम तो उनको अनेक मिथ्या आक्षेपों द्वारा गृहस्थवर्ग की अश्रद्धा पैदा कर देंगे या उतरनेको आश्रय तक नहीं देंगे गच्छोंका झघडा भी इन्हीं महात्माओंने केवल अपनी २ प्रतिष्ठाके लिये कहा तक पहुंचा दिया है कि आज जैन संघ इन्हींमें अपना विजय या आत्म कल्याण समझ रहा है आज हमारे उन निग्रंथ महात्माओं में दुराग्रह या मानकी सीमा किस पराकाष्टाको पहुँची है कि आप स्वयं भूलते हुवे भी अपनी भूलो की तरफ लक्ष्य देते नहा बलके किसी बुद्धिशाली विद्वान् श्रावकने उनको अपनी भूल सुधारने के लिये नम्र प्रार्थना भी करे तोभी भूलको न स्वीकार कर प्रत्युत उसीपर लाल पीले होकर अनेक अपशब्दों की झडी तक लगा देते हैं। अहा! हा! सत्य है जब तक आत्मामें ज्ञान गर्भित वैराग्य उत्पन्न होता नहीं तबतक आत्मसिद्धि भी होती नहीं। वस्तुत मुमुक्षु महात्मा सत्यके ही पक्षपाती होते है, उसमें दुराग्रह करना महान् पाप समझते हैं। गुणानुरागी भये बिगर आत्मीय गुण भी खिलते नहीं देखा इसी विषयको स्फुट करनेमें ज्वलन्त उदाहरण पूज्य श्री गौतमस्वामीका है जिन्होंने अपने अनुपयोगसे बोलने पर आनन्द श्रावकको खमाया था और अपने बोलनेपर मिच्छामि दुक्कड दियाथा क्या हैं आज भी मुनिवर्ग अपने भूलों पर मिच्छामि दुक्कडं देनेको तैयार ? देखो उपासक दशांग सूत्रमें आनन्द श्रावकका अधिकारमें (तद्यथा—)

एकदा समय पूज्य गणधर गौतमस्वामी श्रमण भगवत श्री मन्महावीरदेव की आज्ञा पाकर गोचरीके निमित्त वाणियग ग्राममें पधारे क्रमश आप सभी अमीर गरीब गृहस्थोंके यहाँसे आहार पाणी लेकर पीच्छे लौटते हुवे कोल्लाग सन्निवेस नामक ग्रामसे नहीं ज्यादा दूर नहीं ज्यादा पासके मार्गसे ईर्या समिति पूर्वक जाते हुवे गौतम स्वामीने कोल्लाग सन्निवेस नामक ग्राममें जाते हुवे बहोतसे लोगोंको देखा और बहुत से लोगोंको परस्पर इस तरह वार्तालाप करते हुवे सुना, कि "श्रमण भगवंत श्रीमन्महावीरदेवके अतेवासी परम भक्त श्रमणोपासक आनन्दनामा श्रावकने पोषधशालामें मरणान्त संलेखना की है।" "अर्थात् जावज्जीवन का अनशन स्वीकार किया है" यह बहोत लोगोंके मुखसे सुन कर गौतम स्वामी ऐसा मनमें विचारने लगे कि मै वहा जाऊं और उस श्रमणोपासक आनन्दको देखू ऐसा विचार कर जहा कोल्लाग सन्निवेस गाममें पोषध शाला थी जहा उस धर्मधुरन्धर श्रावकने अनसणको स्वीकार कर रखा था उसी पोषधशालामें पधारे उस समय आनन्द श्रमणोपासकका हृदय गौतम स्वामीको आते हुये देख बहोत ही हर्षसे गद्गद् होगया और भगवान् गौतमस्वामीको वन्दना नमस्कार कर ऐसे बोले, कि हे भगवन्! मेरा शरीर अनेक प्रधान तपोंके आचरण करनेसे बहोत ही क्षीण हो गया है और हे देवानु प्रिय! तुम्हारे इन पूज्य चरणोंके पास आनेके लिये मेरमें उठनेकी भी शक्ति नहीं रही है इसलिये

हे पूज्य ? अनुग्रह पूर्वक प्रसाद करो और यहा मेरे पास पधारो जिससे हे देवानु प्रिय ! मैं अपने मस्तकसे आपके चरण कमलोंको वादू और नमस्कार करु यह सुन गौतमस्वामी आनन्द श्रावकके पास आये और उस परमार्हत् आनंद श्रावकने त्रिकरण शुद्धिसे उनके पूज्य चरण कमलों की वन्दना करी और नमस्कार किया और हाथ जोड कर ऐसा प्रश्न किया कि 'अत्थि ण भंते ? गिहिमज्झा वसंतस्स ओहिनाणेण समुपज्जइ''

हे पूज्य ! क्या गृहस्थको भी अवधि ज्ञान उत्पन होता है ? गौतमस्वामी बोले कि हे आणद ! 'हता अत्थि'' हा होता है। आणंद श्रावक बोले कि हे भगवन ! यदि गृहस्थावस्था में रहते हुवे श्रावकको अवधि ज्ञान होता है तो हे पूज्य गृहस्थावस्थामें रहे हुवे मुझे भी अवधिज्ञान उत्पन हुआ है यहा से पूव दिशामें लवण समुद्रमें ५०० योजन तकके क्षेत्रको देखता हू, इसी तरह पश्चिम, दक्षिण उत्तर प्रत्येक दिशामें ५०० योजन दूर तकके क्षेत्रको देखता हूँ और जानता हूँ और उर्ध्व लोकमें सौधर्मनामा देवलोक तकके क्षेत्रको और अधोलोकमें रत्न प्रभा नरकके लोलुआ नामक प्रस्तर तकको देखता हू और जान ता हू —यह सुन गौतमस्वामी आणद श्रमणोपासकसे बोले कि, हे आणद ! गृहस्थको अवधिज्ञान होता है किन्तु इतना वडा होता नहीं जितना कि तुम बोलते हो इसलिये तुम अभी इसकी यहीं आलोयण लो ! और मिच्छामि दुक्कड दो ! इस कर्मके प्रायश्चित निमित्त तप करो ! यह सुन आणंद श्रावक पूज्य

गौतमस्वामीसे बोले कि हे पूज्य! जिन वचनोंके सत्य रहते हुये यदि उनका अन्यथा प्ररुपणा करे तो उसकी आलोयणादिआते हैं। हे पूज्य? जिन वचनानुसार सत्य कहते हुये को तथा रुप सद्भावोंके रहते हुये आलोयणादि कर्म नही करने पडते हैं और न तप वगैरह भी करने पडते हैं। इसलिये हे पूज्य! इस ठिकाने आपही आलोइए आणदके यह वचन सुन गौतम स्वामीके मनमें शंका उत्पन्न हुई और आप वहांसे निकल कर श्रीवीर प्रभुके पास आये और गमनागमन सम्बन्धी 'इर्या' पथकी क्रिया कर श्रमण भगवत श्रीमन्महावीर देवको वन्दना और नमस्कार किया और भगवतको आणद श्रावक सम्बन्धि वृत्तान्तको कह कर पूछने लगे कि हे पूज्य! उस विषयमें आणद श्रावक आलोवे किंवा मेरेको आलोयण करनी चाहिये? श्रमण भगवंत श्रीमन्महावीरदेव बोले कि हे गौतम? इस विषयमें तुम्ह ही आलोवो और आणद श्रावक के पासमें जाकर इस अर्थके विषयमें खमावो कारण आणदको उतना ही ज्ञान उत्पन्न हुआ है जितना कि वह कहता है। यह सुन गौतमस्वामी अपने धर्माचार्यके वचनोंको तथास्तु कह कर उसी समय आणद श्रावकके पास आये और आनद से खमाया और उस विषयमें आलोयणा की। अहा! हा। धन्य थे वे गुरु जिन्होंने सत्यका ही पक्ष किया और धन्य थे वे महामुनि जिन्होंने आनदसे खमाया!! और धन्य है उस धर्मके रहस्यको जानने वाले उस आनदको!!! जहा मानके वश झुठका ही सत्य सिद्ध करते हो वहा वे स्वयं संसारमें डुबते

है औरोंको भी डूबाते है इसलिये धर्मार्थी पुरुषोंको अपनी मूलों पर कदाग्रह न कर सत्य पथका ही अंगीकार करना उचित है और यही आचरण मोक्षका साधक है कि बहुना वर्तमानके जैन संघको यही मार्ग अवलम्बन करने में ही श्रेय है।

चार ज्ञानवाले उस पूज्य गौतम स्वामीने गृहस्थ श्रावक आनदसे मिच्छामि दुक्कडं देते मनमें कुछ भी नही लाये—ये थे मुमुक्षु महात्माओंके आचरण। उस स्थितिमें क्या जैन संघकी शक्ति छिन्न भिन्न हो सक्ती है—कदापि नहीं। इतनाही नहीं किन्तु इस विकराल कालके प्रभावसे वही स्थिति आज श्रावक गणकी भी हो रहा है। आज उसी शक्तिका दुरुपयोग होते देख किस शासन हितेच्छुके हृदय विदीर्ण न होते होंगे अरे प्रति वर्ष स्थान स्थान नगर नगरमें जैन सघका पयूषण प्रसगमें असाधारण सम्मेलन होता है—पोषा—समायक जिन पूजा चैत्य परिपाटी सावत्सरीक प्रतिक्रमणमें ८४ लक्ष जीवायोनि से क्षमत क्षामणा आदि सभी कृत्य करते हैं—लेकिन कभी इन निम्न लिखित प्रश्नों पर भी कहींके जैन सघने विचार किया है। जिससे कि शाशनोन्नति होनेवाली है।

(१) जैन सघमें चलती हुई इस फूटका अंत कैसे हो?

(२) दिगंबर श्वेताम्बर स्थानकवासी तेरह पथी आदि भिन्न भिन्न शाखाओंके होनेमें कौन कौन कारण है—उनके सम्मेलन होनेमें कौन से उपाय होने चाहिये जिससे पुनः नव शक्ति का सघटन हो सके।

(३) समग्र भारत वर्ष में फैले हुवे अनेक जैनोंके प्राचीन तीर्थोंकी स्थायी रक्षाके लिये क्या उपाय है? श्वेतांबर दिगंबरों में स्थान स्थान पर होने वाले तीर्थ विषयक झगड़े किस प्रकार से हल हो सकते हैं। जिससे संघकी वृद्धि हो।

(४) जैनों की संख्या प्रति वर्ष क्यों अधिकतर घट रही है जो कि आज से ५० वर्ष के पेस्तर २०-लाख जैन प्रजा थी आज वही घटती १० लाख ७५ हजार रह गई इतना ह्रास होनेमें क्या कारण है। इसके लिये जैनों को क्या क्या उपाय करने चाहिये?

(५) दिन प्रति दिन विधवाओं की संख्या क्यों बढ़ती ही जा रही है? उसके कारण क्या क्या है? उनके रक्षण 'व' शिक्षण के लिये क्या प्रबंध है? जिसमें समग्र भारत वर्षीय जैन महिलायें अपने शेष जीवनको सुख पूर्वक निर्वाह कर सकें?

(६) जैनों में कन्या विक्रय कितना बढ़ गया है कि आज बहु-संख्यक जैन नवयुवक वर्ग अविवाहित ही कालके शरण होते हैं? उसको शीघ्र रोकनेके लिये क्या क्या प्रयत्न होने चाहिये।

(७) जैनोंमें किस संप्रदाय में कितने साधु, हैं। किसकी आज्ञा में हैं। कौन गुरु है। कैसे आचरण है। कितने विद्वान् हैं-? और अपने जीवन में किन किन साधुओंने क्या क्या शासन सेवा की। इत्यादि सब ही सप्रदाय के पूज्य आचार्य

साधु मुनि यति आदि की विस्तृत जीवन चरित्र की द्योतिका कोई जैन डायरी आज तक किसीने प्रकाशित नहीं किया! जिसके न होनेसे अनेक पाखडी नष्ट च रित्र बदमाश लोग मुनि यति के वेषमें रहकर स्थान स्थान पर अनेक उत्पातोंसे जैन सघको त्रस्त कर रहे हैं, और उसी वेषकी आडमें अनेक अधर्म कुकृत्योंसे इस पवित्र जैन धर्म को भी कलंकित कर रहे हैं जिससे दिन प्रति दिन मुनि व यतियोंके प्रति अश्रध्धा की प्रबल तरगें आज अधिकाश जैनप्रजामें लहराने लगी हैं – यदि ऐसी डायरी प्रकाशित होकर स्थान स्थान पर भेज दी जाय तो ऐसे उपद्रवियोंसे सघ अच्छी तरह से सुरक्षित रह सकता है और धर्म को कलंक आवे ऐसे आचरण भी न हो सके और गुणिजन वे आदर भी ठीक हों।

(८) अधिकाश जैन नवयुवक वर्ग धार्मिक ज्ञानसे शून्य है जिससे अन्य धर्मियोंके शिक्षण से अन्यान्य संस्कार पडते जा रहे हैं जिससे जैनियोंके मूलमे ही भयंकर कुठाराघात हो रहे हैं। इसके लिये स्थान स्थान जैन पाठशालाओं के प्रबंध होनेके विचार।

(९) समग्र भारत में कौन कौन शहरोंमें कितने जैनोंके घर हैं! कितने धनिक हैं? और कितने गरीब हैं? कितने वकील हैं? व बेरिस्टर हैं? जैन बंधुओंमें कितने धमज्ञ हैं। और उसके प्रसारक हैं? कितनी संस्थाये हैं? किन २ सद्

गृहस्थोंने अपने २ जीवन में तनसे धनसे व मनसे इस वीर शासनकी अपूर्व सेवा की? ऐसी जैन श्रावक श्राविकाओं की डायरी होनेसे हम अपने सहधर्मी बंधुओंकी वर्त्तमानिक स्थिति पर पूर्ण विचार कर सकते हैं।

(१०) जैनो के वर्त्तमान समाचार किन २ भाषाओंमें कहाँ कहाँ से कौन कौन निकलते हैं उसमें विशेष सेवा कौन पत्र कर रहा है। इत्यादि—

इत्यादि विषयों पर क्या हमारे पूज्य मुनियोंने या कहीं के जैन संघने एकत्रित होकर कभी विचार किया है? या इन अपूर्व जैन सम्मेलनके प्रसंग में पूर्वोक्त विषयो पर पर्यालोचन कर आचरणमें कुछ भी लाये हैं! यदि इसका उत्तर है तो केवल "नहीं" के और हो ही क्या सकता है—यदि ऐसे सम्मेलनके असाधारण प्रसंग में भी शासन रक्षा विषयक कुच्छ भी विचार न हो यातद्विषयक प्रवृत्तियों का सर्वथा अभाव हो दीख पड़े तो! हम अपने अभ्युदयके लिये क्या आशा कर सकते हैं क्योंकि शासन संबन्धी अनेक विषयों पर विचार करनेके लिये चतुर्विध संघको इस पर्यूषण पर्वसे बढ़कर उत्तम समय ही और कौन है?

समग्र जैन संघ अच्छी तरह से जानते हैं कि जैनोपर ३ ४ वर्षमें क्या क्या विषम प्रसंग आये हैं क्या काकरोलीका प्रसंग जैन मात्र को मालूम नहीं है। अरे! उस धमस्तमरूप मन्दिरका जबरदस्ती से गिरवाया जाना इतना ही नहीं किन्तु उन पूज्य तीर्थङ्करों की प्रतिमाओं की भी नाना तरहसे अवहेलना कीया

जाना, इतनी पर भी राज्य में जैनोकी पुच्छ भी सुनाई न होना इत्यादि इत्यादि—जैनो! यह मंदिर की 'व' उन प्रतिमाओंकी अवहेलना नहीं है किन्तु इसमें समग्र भारत वर्षीय जैनोका मान मर्दन रहा हुवा है—विगर मानके जीति प्रजाका जीवन ही क्या है? एक कविका वचन है।

अधमाधनमिच्छति धनमानच मध्यमा ।
उत्तमा मानमिच्छति मानोहिमहताधन ॥

अर्थ—अधम पुरुष केवल धनको ही चाहते हैं मध्यम स्थितिके लोक धन और मान इन दोनों को चाहते हैं, उत्तम पुरुष केवल अपने आत्मगौरवकी इच्छा रखते है क्योंकि मानही उत्तम पुरुषोंका धन हैं।

जैनो! तुम्हारी तरह मुसलमानो में यदि कहीं ऐसी दुर्घटना होती तो न मालूम कितनो के खून बह जाते—अन्तमें अपने मान ही के साथ जीवित रहते सोचो जरा कि हम लोगो में कितनी कायरता आगई है और हम लोग कितने कायर हो गये हैं अरे! जहाँ धर्म रक्षा के लिये हमारे ही पूर्वज श्री विष्णु कुमारजी ऐसे महामुनिने "नमुचि"का नाश कर देना धर्म समझा था—क्या उन वीर गुरुओं के उपदेशों से शासित होने वाली उस समयकी जैन प्रजा क्या कायर हो सकती है? कभी नहीं। यह धर्म क्षत्रियोंका है वीर ही उसका अधिकारी है कायर नहीं—वीर पुरुष गृहस्थावस्था में भी विजयी होते हैं और <u>वार्द्धक्येमुनि वृतीना</u>

इस पूर्वजो की नीति अनुसार चारित्र धर्मको भी वीरताके साथ स्वीकार कर शासन की रक्षामें सदा उद्यमवत रहते हुवे अतरग शत्रुओ पर भी विजय पाकर उनकी आत्मा सिद्ध बुद्ध होती है, आज उन्हीं वीर धर्म गुरुओ के संतान केवल अनित्यादि उपदेशो को दे देकर जन प्रजा को इतनी तो कायर बना दी है कि आज वे अपने तन धन 'व' अपनी बहिनो की लज्जा, व, धर्मकी रक्षाके लिये भी परमुखा पेक्षी हो रहे हैं—वे स्वय अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ है। प्रथम तो शरीर में शक्ति हि नहीं दूसरे उनमें वैसे हा उपदेशो के संस्कार पड़े हैं जिससे उनमें शूरत्व कहासे हो! अधिकांश जैन प्रजा अपने को बनियाँ ही कहनेमें धन्य समझ रही है वस्तुत जैन जाति वैश्य नहीं है किन्तु सब क्षत्रिय है, देखो ओशवशमुक्तावलि प्रभृति ग्रन्थो को और देखो इतिहास तिमिरनाशक ग्रन्थमें राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने अपने को जैन क्षत्रिय लिखा है तब अपने को बनिये लिखते हुवे विचार नहीं होता।

जैनो! जरा देखो पंजाबमें वीर अकालि अपने धर्म स्थानो की रक्षाके लिये 'व' अपने आत्मगौरव की रक्षाके लिये कितने बलिदान हो गये और हो रहे हैं और उनके साथ ही उनकी वीर महिलायें अपने प्यारे फरजंदो (पुत्रो) को मशिनगनके आगे रखतो हुई मनमें कुच्छ भी दुःख नहीं लाती। जब तक तुममें भी ऐसी शक्तिये पैदा न होगी तब तक तुम ऐसे ही हमेशा संसारमें पदद्लित ही होते रहोगे, देखो, जरा, ध्यान दो—इसी तुमारी

अकर्मण्यता व कायरताके कारण ही उस पवित्र धार्मिक तीर्थ भूमिके समान धर्मपुर्में मायावाले की जमीन को देखते देखते हमारे हाथसे बलात्कारसे दूसरो ने छीन लिया, उसी तरह धर्म द्रोहियो द्वारा पालनपुर के उपाश्रयका जलाया जाना और भवि ष्यमें श्री सिद्धाचलजी आदि तीर्थों पर आने वाले विषम प्रसंग जिसके अभीसे चिन्ह दीखने लगे हैं इत्यादि क्या जैनसंघको विदित नहीं है, आज तीर्थोंपर अन्य लोकोंके आक्रमण दिन प्रति दिन बढ़ते ही जा रहे हैं। एक प्रकारसे जैनो के सब ही बड़े बड़े तीर्थ संकट में है। इसी तरह इस पवित्र जैन धर्म के साहित्य का उस प्रकारसे सर्वत्र प्रचार न होनेसे या अच्छे अच्छे प्रतिभा शाली विद्वान् वक्ताओ का सर्वथा सर्व स्थानो में न पौंचनेसे या एक प्रकारसे उनका सर्वथा अभाव ही कहा जाय तो अनु चित नहीं है।

जैन जगतमें सब भाषाओंमें विशाल जैनसाहित्यके रहते हुये भी हमलोग उसका सर्वत्र फैलाव नहीं कर सके, जिससे जैन धर्मके विषयमें जैनेतर विद्वान् कभीकभी उटपटाग लिख मारते हैं पूनाके रहनेवाले, पं० विष्णुशास्त्रीने तो जैनधर्मको प्रोटेस्ट हो लिख मारा है, कितने ही इसको बौद्ध धर्मकी शाखा ही समझ रहे हैं, अन्य विद्वानोंकी बात तो दूर रही किन्तु देशके धुरंधर नेता श्रीयुत लाला लजपतरायजी जैसे प्रखर विद्वान् भी अपने लिखे भारतवर्षके इतिहास नामक ग्रन्थमें जैनधर्मके विषयमें अविचारी आक्षेप जनक लेख लिख चुके है जिसको देखनेसे यदि

कुछ भी जिसको जैनधर्मका ज्ञान होगा वह स्पष्ट यही कह देगा कि लालाजी सर्वथा जैन धर्मसे अनभिज्ञ हैं जिसके बारेमें अम्बाले के जैन संघने जाहिर सभामें लालाजीके जैन धर्मपर अविचारी आक्षेप जनक लेखोपर विरोध उठाया था और एक संघ तरफसे डिपोटेशन भी लालाजीके पास गया था जिसपर लालाजीको अपनी भूल स्वीकार करनी पड़ी और अभिवचन दीया कि इसकी शिघ्र ही सुधारणा हो जायगी। उसी तरह कलकत्तेसे प्रकाशित "प्राचीन भारतवर्षीय धर्मोका इतिहास" नामक पुस्तकमें भी जैन धर्मके विषयमें कई बातें झूठी लिख मारी हैं एसी कइ पुस्तकोमें विद्वान् वर्गकी जैसी समझ भई उसी तरह उन्होने लिख दिया है और लिख रहे हैं जिसका परिणाम यह होता है कि जन साधारणमें जैन धमके विषयमें उल्टी समझ हो जाती है—जिससे जैन धर्मपर महान् आघात पोंचता है भविष्यमें इस तरहकी गलत समझ न हो इसके लिये प्रत्येक जैन मात्रको उचित है कि अपने धर्मके लिये वा अपने संसारमें आत्म गौरवकी रक्षाके लिये अन्य अनेक व्यवहारिक कार्योमें खरच होनेवाले अगणित द्रव्योंसे यदि थोडासा भी शिक्षणके जिये निकाल दिया करे तो आज जैनो कि जो परिस्थित हो रही है उसकी शिघ्र ही सुधारणा हो सकती है इसी द्रव्यसे स्थान स्थान पर जैनपाठशालाये स्थापित हो सकेंगी जिसमें बहोतसे अधिकांश अनाथ बालकों को शिक्षण मिलनेसे थोड़े ही दिनोंमें जैनोंमें अनेक विद्वान दृष्टिगोचर होने लगेंगें— उसी द्रव्यसे अनेक जैन धमके विशाल सिद्धान्तोका अनेक भाषा-

ओंमें उन्हीं विद्वान् धर्मोसे अनुवादित होने लगेगा। एवं च नित्‍य यकमात् घूमनेवाले ये हमारे पूज्य मुनि, यति, या दीक्षाभिलाषी गृहस्थोंको उच्च कोटीके शिक्षणके लिये एक विराट जैन विद्यालय उद्घाटन होगा जिसमेंसे निकलनेवाले पूज्य गुरु समुदायोंमेंसे अनेक प्रतिभाशाली उपदेशक तैयार कर सकेंगे—जिससे एक दिन यही धर्म सार्वभौम हो सकता है—विद्याके दिन प्रति दिन अभाव होनेसे आज अधिकांश जैन, यति, मुनि, व श्रावक ज्ञान शून्य ही दीखाई दे रहें हैं जिससे ही आज हम लोग अज्ञानरूपी अंधकारमें फसे हुये हैं इन पूर्वोक्त विचारोंपर यदि हमारे जैन संघके आगेवान वगने ध्यान न दीया और उपरोक्त अनेक प्रसंगों के आनेपर भी यदि जैनोंकी घोर निद्रा न छूटी और अपनी छिन्न भिन्न हुई इस संघ शक्तिके पुन संघट करनेमें यदि प्रयत्न न हुवे प्रत्युत विशेष राग द्वेषादि कारण उपस्थित रहे तो जो कुच्छ भी चिर संबन्ध प्रेम ततुका 'श रहा है यह भी विच्छेद होगा! इससे शासनोन्नति तो दूर रहेगी किन्तु जैनोका दिन प्रति दिन विषम ही काल होता जायगा जब तक राग द्वेष ईर्षा असहिष्णुता आदि दुर्गुण है तबतक हमलोग पर्व पर्युषणका महत्व ही नहीं जानते हैं केवल शास्त्रसुने और चल दिये—इतने मात्रसे कल्याण नहीं है किन्तु उसके साथ आचरणमें लानेकी भी परम आवश्यकता है! क्योंकि सम्यग् दर्शन सम्यग् ज्ञानकी प्राप्ती होने पर भी उसकी सिद्धि सम्यग् चारित्रपर ही निर्भर है यही पूज्य उमा स्वाति वाचक भाष्यकार भी यह रहे हैं-

(सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग:)

प्यारे जैन बंधुओं ! जैनोंका भी एक समय वह था कि इनो जैन संघमें केशीस्वामी 'व' गणधर गौतमस्वामी ऐसे धर्मधुरधर नेता विचरते थे जिस समय भगवान् वीर प्रभुका शासन जगतमें नवीन ही फैल रहा था और पुज्य दानीय भगवान् पार्श्वनाथ स्वामीका शासन उस समय दिग् दिगंत व्यापी हो रहा था और आपके मुख्य सतानिये पूज्य श्रीकेशीस्वामी चतुर्विध संघमें सूर्यवत् दीप रहे थे एकदा ग्रामानुग्राम विचरते हुवे सावत्थी नगरीके पासमें रहे हुवे तिंदुक वनमें समवसरे इधर पूज्य भगवान् वीर प्रभुके मुख्य गणधर श्रीगौतम स्वामी भी अनेक साधु मण्डलके साथ परवरे हुवे उसी नगरीके बाहरके कोष्टक वनमें समवसरे क्रमशः गोचरीके निमित्त निकले हुवे दोनों तरफके साधुओंका सावत्थी नगरीमें सम्मेलन होना और परस्पर साधुओंके वेशमें और आचारोंमें भिन्नता देख कर दोनो मुनि समुदायके मन संशयाकुल होनेसे-उस समय अपने अपने साधुओंके मनोगत संशयोंको जानकर भगवान् गौतमस्वामी अपनेसे ज्येष्ठ श्रीकेशी स्वामीको समझ कर स्वय सशिष्योंके साथ तिंदुक वनमें पधारे और उसी तरह पूज्य केशीस्वामी भी गौतमस्वामीको आते देख कर बडे ही बहुमानके साथ उनका आगत स्वागत कर बैठनेके लिये आसन दीया उस समय दोनो शासनके धुरधर नेता दोनो तरफके संघ समुदायमें सूर्य चन्द्रकी तरह दीप रहे थे "भविष्यमें संघशक्ति छिन्न भिन्न नहो, राग द्वेषादिकी उत्पत्तिसे कहीं

धर्मका मूलतत्व अन्तरित होकर अधर्मका प्रसार न हो--या साधुजन अपने अपने पक्षके ममत्वमें पड़कर कहीं संयम आचनसे च्युत न हो" इत्यादि दीर्घ विचारोसे प्रेरित होकर ही इन दोनों धर्मधुरधर नेताओंने परस्पर धार्मिक चर्चाओसे अपने अपने साधु मण्डलके मनोगत सशयोका निराकरण कर 'व' केशीस्वामीने २४ वे तीर्थंकर भगवान् वीर प्रभुका शासन प्रवृत्त हुआ समझ कर सशिष्योक साथ वीर शासनको सहर्ष स्वीकार कर लिया यह देखो उत्तराध्ययन सूत्रके २३ मे अध्ययनमें इस तरह है।

तीन लोकमें दीपक समान भगवान पार्श्वनाथ स्वामीके सता लिये बाल ब्रह्मचारी पूज्य केशी कुमरजी थे, जिनकी कीर्ति उस समय जगतमें दिगदिगत व्यापी हो रही थी ज्ञान चारित्रमें आप बहोत ही उन्नत थे उसी तरह आप अवधिज्ञानके भी धारक थे एकदा समय अनेक मुनि वृन्दोके साथ ग्रामानुग्राम विचरते हुवे सावत्थी नगरीके पासमें रहे हुए तिन्दुक नामक उद्यानमें समवसरे इधर उस समयमें धर्म तीर्थङ्कर भगवान श्रीवर्द्धमान स्वामी (महावीर प्रभु) सम्पूर्ण लोकमें प्रसिद्ध हो गये थे, उस लोक प्रदीपक भगवान वर्द्धमान स्वामीके मुख्य गणधर शिष्य महान् यशस्वी विद्या और चारित्रमे बढे हुवे और द्वादशागोके ज्ञाता भगवान गौतम मुनि भी अपने मुनिसंघके साथ ग्रामानुग्राम विचरते हुवे उसी सावत्थी नगरीके पासमें रहे हुवे कोष्टक वनमें समवसरे उस समय दोनो महात्माओंके मुनिगण 'जो कि छ काय जीवके परम रक्षक ज्ञान दर्शन चारित्र वान् अनेक तपस्याओं

मे विनय धार हुए हो रहे हैं, गोचरीके निमित्त सावत्थी नगरी में फिरते फिरते दोनो तरफके मुनि समुदायोंकी भेट होना और परस्पर चार नजर होने लगी" अर्थात् केशी स्वामीके साधुओने गौतम स्वामीके साधुओको देखा और उनके शिष्योंने उनको देखा जिससे दोनो मुनि समुदायोंके भिन्न भिन्न वेष और आचारो को देखकर परस्पर अनेक संशय उत्पन्न होने लगे, कि एकही मोक्ष का मार्गमें प्रवृत्त होने वाले प्रभु श्रीपार्श्वनाथ स्वामीके व श्रीवर्द्धमान स्वामीके साधुओंके आचारोंमें इतनी भिन्नता क्यों ? श्रीवर्द्धमान स्वामीने अपने शासनके साधुओको केवल मानो पेत और प्राय जीर्णवस्त्र का परिधान करनेके लिये उपदेश देना और भगवान् पार्श्वनाथ स्वामीका उस विषयमें कुच्छ भी नियमोका न बांधना, श्रीपार्श्वनाथ स्वामीने चार महाव्रत प्ररूपे और श्रीवर्द्धमान स्वामीने पांच महाव्रत प्ररूपे एकही मोक्ष रूप मार्गके प्रवर्तकोंके विधान किये हुये आचारोंमें इतना भिन्नतामे क्या कारण है ?

क्योंकि "कारण भेदे कार्य भेद" कारणो कि भिन्नतामें कार्यकी भिन्नता रही हुई है और मोक्ष रूप कार्यको दोनो ही तीर्थंकरोंका एक ही है इस तरह दोनो तरफके संशयाकुल साधु उन शंका करने अपने पूज्य गुरुओंके पास गये, उस समय अपने अपने साधु समुदायके मनोगत भावोंको जानकर दोनोही इन पूज्य गण धुरंधर महात्माओंमे परस्पर समागमन करनेकी ईच्छा हुई जिसमें भगवान गौतम स्वामी अपनेसे ज्येष्ठ केशी स्वामीको मानद कर स्वयं अपने शिष्य मुनि मंडलके साथ आप

देवस्वामी 'व' चरम तीर्थङ्कर श्रीमन्महावीर देव इन दोनो तीर्थ-ङ्करोने पांच महाव्रतकी प्ररूपणा की है। अर्थात् परिग्रह त्यागसे पृथक् ब्रह्मचर्य व्रतका विधान किया है जिससे कहीं भ्रांतिवश कोई शील संयमसे च्युत न हो और २२ तीर्थङ्करोने अपने समयके जीवोंको सरल स्वभावी और बुद्धिमान देख कर ही परिग्रह त्याग में ही ब्रह्मत्याग व्रतको भी अर्थात् स्त्रीका त्याग भी अन्तर्गत कर दिया है इसीसे ही हे पूज्य! भगवान पार्श्वनाथ स्वामीने चार महाव्रतो की प्ररूपणा की है।

यह सुनकर केशी स्वामी बोले! हे गौतम? तुम्हारी बहोत ही उत्तम बुद्धि है, बहोतही उत्तम मेरे संशयका समाधान कीया है। (यह कथन शिष्यापेक्षा पूज्य केशी स्वामी का है आप तो स्वय तीन ज्ञानवान थे आपको यह संशय नहीं था) हे महाभाग? और मा मेरे सशयोका निराकरण करो।

अचेलगो य जो धम्मो जो इमो सन्त रुत्तरो
देसिओ वद्धमाणेण-पासेणय महायसा १
एककजपवन्नाण -विसेसे किन्नुकारणम्
लिंगे दुविहे मेहावी कह विपच्चओ न ते २

हे गौतमे मुने! श्रीवर्द्धमान स्वामीने अपने शासन काल में साधुओको प्रमाणोपेत जीर्ण प्राय धवल वस्त्र धारणात्मक अचेलक धर्मका उपदेश दीया और महान् आशय वाले उन महामुनि पार्श्वनाथ स्वामीने अपने समयके साधुओंको पचवर्णके बहु मूल्य

प्रमाण रहित वस्त्र धारणात्मक साधु आचारका उपदेश किया इस तरह दोनो तीर्थङ्करोके साधुओके वेशकी भिन्नतामें क्या कारण है ? हे गौतम ? इस तरह दो तरहके वेषके होनेसे क्या तुम्हारे मनमें संशय उत्पन्न नहीं होता ? यह सुन पूज्य श्रीगौतम स्वामी बोले कि हे पूज्य ! "विन्नाणेणसमागम्म धम्म साहण मिच्छिय पच्चयत्थं लोयस्स नाणा विह विगप्पणं जत्तयं गहण थं च लोगे लिगप्पओयण-अहभवे पइन्नाओ मोक्ख सम्भूय साहणो नाणच दसणंचेव चरित्तचेव निच्छए" भावार्थ—हे पूज्य ! उन पूज्य तीर्थङ्करोने अपने विशिष्टज्ञान (केवलज्ञान] से जिस जिस समयके जीवोके योग्य जो जो इष्ट धर्मोपकरण समझे उसी तरह उनोने प्रतिपादन किया है—अर्थात् यह आचार रिजु प्राज्ञोके योग्य हैं, और यह रिजु जडोके योग्य हैं, यह समझ कर वर्द्धमान स्वामीने अपने कालमें जीवोंको स्थिति वक्रजड हुइ समझ कर अचेलग धर्मका उपदेश दीया, यदि शिष्योको रगीन वस्त्रोंके पहरनेकी आज्ञा देते तो आज साधुओमें वस्त्र रगनेकी प्रवृत्ति इतनी वढती की फिर वह दुर्निवार ही हो जाती इसीसे आजभी यह संघ श्वेतांबर ही कहा जा रहा है "श्वेत अंबर येषा ते श्वेताम्बरा मुनय तेषा उपासकोऽपि संघ श्वेताम्बर संघ इत्युच्यते" अर्थात् श्वेत वस्त्र ही धारण करनेका जिनका आचार है इससे वे श्वेतांबर मुनिगण कहलाते है, और उन्हींके उपासक गण भी श्वेतांबर कहलाते है पार्श्वनाथ स्वामीके शिष्य रिजु प्राज्ञ होनेसे वस्त्र परिधानका प्रयोजन केवल शरीराच्छादन मात्रही जानते हैं

और न ये कुछ कदाग्रही करते हैं और हे ऐसी स्वामीन्। उन तीर्थंकरोने चतुर्दश उपकरणोंका धारण करना व वर्षा कल्पादि का विधान करना व वेषका प्रयोज केवल गृहस्थोको निश्वासोत्पत्तिके लिये ही किया है। जिससे उन्होका मालूम हो कि ये व्रतधारी साधुजन है अन्यथा अनेक पाखडी लोग अपनी पूजा के लिये अपनेको व्रतधारी कहेंगे जिससे व्रतधारियोंमें भी अप्रिति होगी, यह न हो पय व संयमके निर्वाहके लिये भी है, क्यो कि "धम्मररक्खवेसो, संकइ वेसेण दिखिओमि अहं उमग्गेण पडंत ररकइ ररकइ रायाजणवओय" अर्थात वेष धर्मकी रक्षा करता है साधु क्दाचित अपने चारित्र जीवनसे च्युत होने लगे तो उसी समय उसका वेष उसको शिक्षण देता है कि मैं दिक्षितहू मेरेको यह उचित नहीं है इस तरह से यह वेष उन्मार्गमे पडते हुए साधु की रक्षा करता है इत्यादि वचनसे ओर हें पूज्य! निश्चय नय से तो मोक्षके सद्भूत साधन ज्ञान दर्शन चारित्रही है 'सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग" [तत्वार्थसूत्र] इस विषय में सबही तीर्थंकरोकी एकही मान्यता है इस में किसी की भी भिन्नता नहीं हैं; वेषकी भिन्नतामें रिजुजड वक्रजडादि जीव ही कारण हैं और यह व्यवहार नयसे मोक्षके साधन हैं निश्चय नयसे नहीं निश्चय नयसे तो ज्ञान दर्शन चारित्र ही हैं। ज्ञान कहते है मति ज्ञानादिकको तत्व रुचिको दर्शन [तत्वार्थ श्रद्धानंसम्यग् दर्शनम्] कहते हैं और चारित्र कहते है सम्पूर्ण सावद्य व्यवहारोंसे निवृत्ति होना इसलिये दोनों नयोको जानना आव–

श्यक है। यह सुन, केशीस्वामी गौतमस्वामीको स्तुति करते हुवे अनेक प्रश्न पूछे और पूज्य गौतम स्वामीने भी उसी तरह उत्तर देकर समग्र मुनियोंके व जन समुदायके मनोगत सशयोंका निराकरण कर दीया लेखके बढ जानेके भयसे उन प्रश्नोत्तरोंका यहाँ विशेष उल्लेख नहीं किया है। जिन्हको देखना होवे उप रोक्त अध्ययनसे देखे अन्तमें केशीश्यामीने वीर शासनको सहर्ष सशिष्योंके साथ गौतम मुनिसे स्वीकार किया जिससे दोनो सघ एक होकर कितनेकदिन उस सावस्थी नगरीमें रहे हुवे भी केशीश्यामी वा गौतम स्वामी परस्पर आते जाते रहें और अनेक धर्म सम्बधी वार्तालापोंसे समग्र साधु मण्डलको बहोत ही आनन्दित करते रहें, जिससे दोनों संघ एक संघ होकर एकताको चिरस्थायी बनाय दीया। ये आचरण उन महात्मा ओंमे किसकोटीकी निरभिमानिता व, उनकी प्रखर मुमुक्षु वृत्तिके द्योतक हैं। क्या हैं आज भी ऐसे धर्मधुरधर नेता। जो इस जैन जातीको पुन एकतारूप तन्तुओंसे बाध सके पूज्य मुनिवरो ?

न पाडित्यं वादे न च परमताक्षेप करणे।
मुनीना अन्योन्य त्रुटितमनसा भेदहरणे॥
नवकृतत्व वाञ्छेति पदघटनापर्यवसितं।
पृथग्भूते संघे निपतित विरोधापहरणे॥

अर्थात्—न वादमें न अन्य धर्मों पर आक्षेप करने में पांडि

त्य है वह है परस्पर तत्व विचारों में तूट गये है मन जिनके एसी उन मुनियों में पड़ी हुई भिन्नता के हरणेमें, और उस ललित पद पंक्तियोंसे सुशोभित वक्तृताओं में सार नहीं है, सार है आपसी पढे हुवे विरोधोंको साम्यता पूर्वक निराकरण कर एकता करनेमें उसी तरह यदि धार्मिक स्थिति पर लक्ष्य दिया जाय तो एक प्रकारसे हम लोगोंका धार्मिक पतन भी दिन-प्रति दिन विशेष होता जा रहा है। आज पर्वोमें भी न तो वस्तुत धार्मिक भावनायें ही रही है, न वैसी क्षमन क्षामणा ही होती है उसके विगर सावत्ससरिक प्रतिक्रमण करना केवल व्यवहार मात्र है व्यवहारिक धर्मकी सिद्धि आन्तरगीय धार्मिक भावनाओं पर ही निभर हैं इससे यह न समझना चाहिये कि व्यवहारको उच्छेदन कर देना किन्तु व्यवहारिक धर्मही आभ्य न्तर धर्मका कारण होता है इससे व्यवहार तो अवश्य ही धार्मिक पुरुषोंको आचरणीय है। कहने का सार यह है कि व्यवहारिक धर्मकी शोभा अन्त करण की शुद्धता पर है उसके लिये हमको प्रथम धार्मिक ज्ञानकी आवश्यकता है। उसीके अभावसे धार्मिक प्रसङ्गोंमें कई मतने जीवोंको कषायो से शान्ति मिलना तो दूर रही किन्तु विशेष कषायोंकी प्रबलाग्नि धधक उठती है यह धर्मा राधन न होकर बलकि कमा राधन का कारण हो जाता है इस पवित्र पर्यूषणके आराधक और विराधक कौन है इस विषयमें स्वय श्री श्रमण भगवन्त श्रीमन्महावीर देव चतुर्विध संघको क्या उपदेश कर रहें हैं—उसपर लक्ष्य दे।

"खमियव्व खमावियव्व उवसमियव्वं उवसामियव्वंसुमइ सपुच्छणा बहुलेण होइयव्वं जो उवसमई तस्स अत्थि आराहणा जो न उवसमइ तस्स नत्थि आराहणा तम्हा अप्पणा चेव उवसमियव्वं से किमाहु भंते ? उवसमसारं खु सामन्नं—"

इसकी संस्कृत टीका व भावार्थ यह है।

आत्मना क्षन्तव्य, अपर. क्षामयितव्य. आत्मनोपशमितव्यम् अन्य उपशमयितव्य येन गुर्वादिना स्थविरेण वा सार्द्ध अधिकरण-मुत्पन्न भवेत् तेन सार्द्ध राग द्वेष-त्यक्त्वा सम्यगमति कृत्वा सूत्रार्थयो सपृच्छना बहुलेन साधुना भवितव्य य उपशाम्यति तस्यास्ति अराधना यो न उपशाम्यति तस्य नास्ति आराधना क्रोधी साधुर्जिनाज्ञाविराधक. इत्यर्थ अत्र कि कारण ? इत्याह—निश्चयेन श्रमणस्यचारित्र-धर्मस्यावमेव सार'।

अर्थ स्वय क्षमावान् बनो और अन्योंको भी क्षमावान् बनाओ स्वय कषायोंको उपशमाओ। और दूसरोंके कषायोंको भी उपशमाओ। जिन पूज्य गुरु स्थविरोंके साथ कुछ भी कषायके

स्य है यह है परस्पर तत्त्व विचारों में तूट गये हैं मन जिनके एसी उन मुनियों में पड़ी हुइ भिन्नता के हरणेमें, और उस ललित पद पक्तियोंसे सुशोभित वक्तृताओं में सार नहीं है, सार है आपसी पड़े हुए विरोधोंको साम्यता पूर्वक निराकरण कर एकता करनेमें उसी तरह यदि धार्मिक स्थिति पर लक्ष्य दिया जाय तो एक प्रकारसे हम लोगोंका धार्मिक पतन भी दिन-प्रति दिन विशेष होता जा रहा है। आज पर्वोमें भी न तो वस्तुत धार्मिक भावनायें हो रही है, न वैसी क्षमत क्षामणा ही होती है उसके विगर सावत्ससरिक प्रतिक्रमण करना केवल व्यवहार मात्र है व्यवहारिक धर्मकी सिद्धि अन्तरगीय धार्मिक भावनाओं पर ही निभर है इससे यह न समझना चाहिये कि व्यवहारको उच्छेदन कर देना किन्तु व्यवहारिक धर्मही आभ्य न्तर धर्मका कारण होता है इससे व्यवहार तो अवश्य ही धार्मिक पुरुषोंको आचरणीय है। कहने का सार यह है कि व्यवहारिक धर्मकी शोभा अन्त करण की शुद्धता पर है उसके लिये हमको प्रथम धार्मिक ज्ञानकी आवश्यकता है। उसीके अभावसे धार्मिक प्रसङ्गोंमें कई मतवे जीवोंको कषायो से शान्ति मिलना तो दूर रही किन्तु विशेष कषायोंकी प्रबलाग्नि धधक उठती है यह धर्मा राधन न होकर बलकि कर्मा राधन का कारण हो जाता है इस पवित्र पर्युषणके आराधक और विराधक कौन है इस विषयमें स्वयं श्री श्रमण भगवत श्रीम महावीर देव चतुर्विध संघको क्या उपदेश कर रहें हैं—उसपर लक्ष्य दें।

कारण हो गये हो तो उनसे राग द्वेषको छोड़ कर निर्मल बुद्धि पूर्वक सूत्र अर्थकी पृच्छा करो—जो क्रोधादि कषायोंको उपशमाता नहीं वह इसका आराधक नहीं है क्रोधी साधु जिनाज्ञा विराधक है चारित्र धर्मका यही सार है यही आचार गृहस्थका भी है आपसमें क्षमत क्षामणा शुद्ध होना चाहिये। यही पर्वका सार है।

प्रिय जैन बंधुओ! क्या है आज भी कोई इन पवित्र वाक्यों पर चलनेवाले? अहा! हा! कितने हम लोग दिङ मूढ़ हो रहे हैं। अरे जिससे वैर सम्बंध हो गया हो उससे मीलना भी अच्छा नहीं समझते वहाँ क्षमत क्षामणा कहाँ रही! जहाँ वस्तुत क्षमत क्षामणायें होतीं हैं वहीं परस्पर प्रेमाश्रुके प्रवाह बहने लगते हैं उस समय अपने आपको भी भूल जाते हैं वह आनन्द ही कुछ अपूर्व है जिससे परस्पर शुभकामनाओं की प्रबल तरङ्गे लहराने लगती है ऐसे हार्दिक सम्मेलन ही सब तरहके सुखके साधक होते हैं और जिससे मोक्ष भी दूर नहीं रहता उसीका जहाँ अभाव हो वहाँ लम्बी लम्बी क्षामणा की पत्रिकायें लिखना केवल अपने व दूसरेके समयका या धनका व्यर्थ दुरुपयोग कराना मात्र है। अरे! पर्यूषणके महत्वको तो उस जगदुद्धारक परमात्मा वीर प्रभुके परम भक्त सुश्रावक उदायी महाराजाने समझा था—उन्हीं महाराजा जानते थे कि जब तक इस चंड प्रद्योतन राजाके साथ क्षमत क्षा

मणा होती नहीं उसको आत्मा मेरे कारणसे यावत् कषायोंसे कलुषित है तावत् मुझे सांवत्सरिक प्रतिक्रमण ही कल्पता नहीं पर्याराधनका महत्व भी तबही है जब मेरी और उसकी दोनों आत्मायें उपशान्त हो, आज पर्यूषण पर्वका दिन है अपनी आत्माका उद्धार स्वय उपशान्त हुये बिगर होगा नहीं, क्रोध मान, माया, लोभ यही वस्तुत आत्माके शत्रु हैं मनुष्य नहीं इन कषायोंकी विषवल्लीयो का विच्छेदन करना ही अधर्म है कारण वह उसके पराधीन है यह समझ कर उसी समय उदायो महाराज स्वयं नम्र होकर जेलमें पढे हुये उस चंडप्रद्योतन राजा से क्षमत क्षामणा कर एक साथ सावत्सरिक प्रतिक्रमण किया ये मुमुक्षु धर्मार्थी पुरुषोंके आचरण ? वे लोग लंबीरथी क्षामणाकी पत्रिकायें नहीं लिखते थे न वे हमलोगोंको तरह इस श्लोकको सदा रटनेंमें ही धर्म समझते थे। वे उन वाक्यो को आचरणमें लानेमें ही अपना आत्मोद्धार या उसीको धर्म समझते थे वे वाक्य यह हैं जिसको उभयकाल समग्र जैन जनता मन्त्रवत् पाठ करती है ।

खामेमि सव्वजीवे सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु वेर मज्झं न केणइ (१)

अर्थात्—सर्व जीव मात्रसे क्षमा चाहता हू सब जीवमात्र मुझे क्षमा करे मरी जीवमात्रसे मैत्री है किसीसे मेरा वैरभाव नहीं है ।

इ हीं उच्चभावनाओंको वस्तुत आचरणमें लाया जाय तो
ही आत्मोद्धार के लिये एक अमोघ उपाय है। क्षमावान्
ही अपने आभ्यन्तर व बाह्य शत्रुओं परभी विजय पासकता
है वही उनका प्रतिकार भी यथार्थ में जानता है। जिसने
अपनी उग्र प्रकृतिके कारण समग्र वर्द्धमान नगर के लोगोंको
मार मार कर एक प्रकारसे उसी शहरको श्मशान कर दिया
था जिसने वीर प्रभु पर भी २१ उपसर्ग किये थे वही शूल्पाणी
यक्ष उसी रात्रिके पिछले प्रहरमे ही उपशान्त होकर अपने कृत्यों
पर पश्चाताप करने लगा और अपने अपराधोंकी क्षमा प्रभुके समक्ष
अनेक दिव्य नाटक करके मांगी उसी तरह प्रचंड क्रोधी उस
चंड कौशिक सर्पके क्रोधका ह्रास होकर परम शान्त बन जाना।
यह सब प्रभाव उसी क्षमा धर्मही का है। उसके व्यतिरेक दृष्टान्त
में उग्र तपको करनेवाले निसंग महामुनियोंका भी इसी क्षमा
धर्मके अभावसे किस तरह अध पात होता है यह उसी चंड
कौशिक सर्पकी जीवनी पढ़नेसे ही पाठकोंको स्पष्ट विदित
हो जायगा—जब तक क्रोधसे क्रोधको जीतने चाहता है तावत्
अज्ञान है प्रत्युत उसका आध्यात्मिक व व्यवहारिक पतन भी
हो जाता है—बलात्कारसे कोई वशवर्त्ती नहीं हो सकता! यदि
शरीर द्वारा वशवर्त्ती हो भी जाय तथापि मनसे वह वशवर्त्ती
नहीं हो सकता। समय पाय सबलके निबल निर्बलसे सबल
होते ही हैं ससारकी परिस्थिति भी यही है जिससे वही
सबल होकर उन्हीं अपने शत्रुओको दमन कर अपने वशवर्त्ती

करता है। इससे ही महात्मा पुरुष शत्रु मित्रके विषयमें समचित्त रहते हैं यहाँ तक कि शस्त्र प्रहार करनेवाले पर भी क्षमावान रहते हैं। जिससे कषायोंकी संतती न बढकर वहीं विच्छेद हो जाती हैं, "अतृणे पतितो वन्हि स्वयमेवो पशाम्यति" अर्थात् तृण रहित प्रदेशमें पडी हुई अग्नि स्वयं ही शान्त हो जाती हैं।

जिससे क्षमावान् पुरुषको उपरोक्त स्थिति आती नहीं। इसलिये ही सब धर्मोंमें प्रथम क्षमाको ही स्थान रहा हुवा है। उसके बिगर मार्दव आर्जव शौचादि धर्मों पर भी आरूढ हो नहीं सकता। उसके अस्तित्वमें हो अन्य धर्म भी अनायास से स्वयं प्राप्त हो जाते हैं, यद्यपि इनको सर्वथा पालनेके योग्य साधुवर्ग ही हो सक्ते हैं। तथापि स्थूल रीत्या पालन करना गृहस्थों को भी आवश्यक हैं। क्षमावान् हो अपनेसे उग्र प्रति स्पर्धीयोंको अपना सेवक बना सकता हैं। अथवा "क्षमा खड्ग करे यस्य दुर्जन किं करिष्यति" अर्थात् जिसके हाथमें क्षमारूप तलवार हैं उसका दुर्जन क्या कर सकता हैं। क्षमा कहते हैं क्रोधके अभावको "क्षमा क्रोध जयो ज्ञेयो" क्रोधके विरत पुरुष का विवेक नष्ट होकर एक प्रकारसे वह पागलही हो जाता हैं। *The anger ofpeople is really ashort feat of Madness* अर्थात् मनुष्यका क्रोध सचमुचमें एक पागलपनकी निशानी हैं जिससे कभी कभी अनेक अनर्थ कर गुजरता हैं इसलिये क्षमा वान्ही पर्यूषण पर्वका आराधक हो सकता है अथवा इन पर्वोंमें

अवश्य आत्माको क्षमावान बनाना उचित है। जहाँ क्रोध मान माया लोभका स्थान है वहाँसे धर्म सर्वथा दूर रहता है। हमारे जिनेन्द्र श्री राग द्वेषादि शत्रुओंको जीतने परही उनको केवल ज्ञानकी प्राप्ति हुई है और जिनेन्द्र पदमी शयदो प्राप्त हुआ है। "जयतिरागादि शत्रून् इति जिन " सामान्य केवली। तेषुतेषां वा इन्द्र जिनेन्द्र।" उन्हीं के उपासक गण जैन कहलाते हैं। उन पूज्य तीर्थंकरों का उपदेश भी यही है, कि—

रागद्वेषोद्भवैस्तैस्तैः कर्मभिरयमावृत
अविद्यालिगित सूते जगतित्रीणि चेतन ।

अर्थात्—राग द्वेषोंसे उत्पन्न होने वाले उन अनेक कर्मों से यह आत्मा सदा आवृत होती रहती है जिससे ही अज्ञान वश यही आत्मा ८४ लक्ष जीवा योनि म परिभ्रमण करती रहती है।

इसलिये ही उन तीर्थङ्करोंने क्रोधको क्षमा धर्मसे, मानको, मार्दव धमसे (नम्र वृत्तिको मार्दवगुण कहते हैं) मायाको आर्जव गुणसे (याने सरल वृत्तिसे) लोभको मुक्ती धमसे [याने मुक्तिर्निर्लोभतामता] इत्यादि अन्तरग रिपुओका आत्मीय धर्मों से ही ह्रास हो सकता है—और यही जैन धर्म है— 'उत्तमाक्षमा मार्दवार्जव शौच सत्य संयम तप-स्त्यागा किंचन्य ब्रह्मचर्याणिदशविधो धर्मः'] तब इस पवित्र जैन धर्मके उपासकोंके आदर्श भी

घन क्यों न होने चाहियें—और उनमें संप किस कोटिका होना चाहिये ? दुनियाँ में कहने को तो जैन वृत्ति हमारी कपायोंसे कलुपित। दु ख है अपने ऐसे जैनत्व कहलाने पर। अहा! हा! हा!

इस द्वेषनें ही हम सभी को शक्ति हीन बना दिया।
इस द्वेषने ही जातियों को छिन्न भिन्न बना दिया॥
इस द्वेष ने ही धर्म को भी ग्लानि पूर्ण बना दिया।
इस द्वेष ने ही देश को भी नष्ट भ्रष्ट बना दिया॥

ज्ञानि पुरुषो ने मोक्ष रूप साध्य की सिद्धिके लिये द्रव्य क्षेत्र काल भावके अनुसार 'व' जीवोंकी भिन्न भिन्न अवस्थाये देख कर ही अनेक सामायक पौषध जिन पूजनादि साधन दर्शाये हैं, इन साधनोंसे ही जीव क्रमश स्वल्प कपायी होकर राग द्वेषकी साम्यावस्था को पाता हुआ साध्य को प्राप्त कर लेता है। आज कितना जैनोंमें अज्ञान फैल रहा है कि जिन मंदिर जिन प्रतिमा मुहपत्ति आदि धार्मिक साधनों के पीछे परस्पर लड लड़कर भिन्न भिन्न शाखाये कर दी जो साधन जीवोंके आत्मोन्नतिके एक असाधारण कारण हो रहे थे वे ही आज राग द्वेषके कारणी भूत हो रहे हैं इससे बढकर और दुर्दैव क्या होगा ? अरे उस धर्मके लक्ष्य बिन्दु तरफ लक्ष्य ही किसका है।

जबसे हम लोग धर्मके लक्ष्य बिन्दुसे च्युत हुवे हैं या जबसे जैन जाति उस वीतराग निग्रन्थ प्रवचनके रहस्यसे अनभिज्ञ हुई है तबसे ही इन कपायों की विस्तृत विप वल्लियोंने

समग्र जैन जातिमें वैमनस्य रूपी जहरको फैलाकर समाज के टु कड़े टुकड़े कर दिये—जिसका पुन संघटन होना ही बहुत दुष्कर हो रहा है, जैनो ? उन पूज्यपाद हरिभद्र सूरिजी महाराज के इन अमूल्य वचनामृतों का पान करो—जिससे तुम्हारा अब भी उद्धार हो—

नाशाबरत्वे न सितावरत्वे न तर्कवादे न च तत्ववादे
नपत्तसेवाश्रयणेनमुक्ति कषायमुक्ति किलमुक्तिरेव

अर्थात्—नहीं दिगंबर अवस्थामें न श्वताम्बर अवस्थामें न तर्कवादमें न मतामहमें मुक्ति है वह केवल कषायोंकी मुक्तिमें ही मुक्ति है और भी सुनिये महात्माओंके विशाल विचारों को ।

भवबीजाकुरजनना रागाद्या क्षयमुपागता यस्य
ब्रह्मा वा विष्णु र्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ।

अर्थात्—जन्मजरा मरणादि दु खोंको उत्पन्न करने वाले एसे राग द्वेषादि जिसके सर्वथा क्षय हो गये हों वह चाहे ब-ह्मा हो विष्णु हो महादव हो या जिनदेव हो कोई भी हो उनको हमारा नमस्कार है ।

अस्तु उसी तरह आज कल हम लोगोंमें जिव्हा द्वारा अनर्थ दड रूप अधर्म भी किस तरह फैल रहा है कि जिसका हम वर्णन ही नहीं कर सकते । कितनेक इसीमें आत्म गौरव समझते हैं अहा ! हा ! इसी जिव्हासे कितना प्रतिदिन पाप होता है इसका

कभी किसी को ख्याल है। या कभी कोई विचार करते हैं— अरे ! तोपसे बंदुकसे या मशीनगनसे मनुष्य एक दूसरेका नाश करता है यह सब जानते हैं परन्तु जीभ रूपी मशीनगन जो अन्य शस्त्रोंसे अनत गुणाकर गुजरती है उसकी कोई कल्पना करता है। तोप या मशीनगन को तो एकली को ही काम करना पडता है किन्तु मनुष्य की जीव्हा रूप तोप तो हजारो साधनो द्वारा हजारो प्रपचो द्वारा ऐसे घोर शोक और दु खके बीज बोती है कि जिसके कटु फलोंकी गिनती ही न हो सके तोप या मशीनगन द्वारा हुवा नुकसान थोडे समय के बाद विस्तृत हो सकता है परन्तु मनुष्य की जीव्हा से होनेवाला अनर्थ बहुत वर्षों तक कायम रहता है और उसमेंसे सहस्रश अनर्थ परपरा से वृद्धि गत होती रहती है। निर्दयता, क्रोध, इर्षा, द्वेष, कटु वचन दूसरों की भयकर टीका व्यर्थ गप्पे चुगली परनिन्दा आदि ये सब जीभके ही दोष हैं, शस्त्र तो सिर्फ शरीरका ही नाश करता है परन्तु जीभ तो मनुष्यके जीवनसे भी प्यारी आबरू और चारित्र प्रतिष्ठाका नाश कर डालती है और एक दफा चारित्र प्रतिष्ठा की हानी होनेसे मनुष्यका तमाम जीवन बेकार दु खमय क्लेशमय और मृत्युके समान हो जाता है। किसीके आधार पर किये हुए आक्षेप शिष्ट मनुष्यों के हृदयमें तिरस्कार पैदा करने वाले असत् कलंक अतिशयोक्तिसे कथन किया हुवा दूसरेका सूक्ष्म दोष ये तमाम कीडे समाजके जीवन रूप हृदय को अन्दरसे कुतर खाते हैं अल्प समयसे लंडनमें परनिन्दा के भयंकर

दुर्गुणों को समझने वाले कितने एक विवेकी पुरुषोंने एक मंडल स्थापन किया है जिसका नाम "परनिन्दा निरोधक" मंडल रखा है। इस मंडलका उद्देश्य दूसरों की और बदबोई होती हुई को अटकानेमें अपना सर्व बल खरच करना है क्या ऐसे मंडल स्थान स्थान हम लोग भी खोल सकेंगे। अरे! जो मनुष्य कलह प्रिय है वह अपने शत्रुओंसे बिगाड़ता है इतना ही नहीं किन्तु वह अपने मित्रों के साथ भी अनबनाव करता है। वह अपनी कठोर और बहुत बोलने वाली जीभसे अपने शत्रुओं को ही त्रास पहुंचाता है ऐसा नहीं किन्तु इससे वह अपने मित्रों को भी शत्रु के रूपमें फेर रहा है। परन्तु जो सच्चा ज्ञानी है वह प्रसंग पर प्रेम पूर्ण मौन धारण करता है जिससे वह अपने मित्रोंका अपने प्रति सद्भाव बढानेके उपरान्त अपने शत्रुओंको भी धीरे धीरे मित्र बनाता है इसी प्रेम पूर्ण मौनका इतना भारी प्रभाव था, कि भगवान् महावीर देवने अपने १२ बारह वर्ष ६ महीने साढे पन्द्रह दिन तकके दुर्धर मौन व्रतके प्रतापसे अन्तरंग शत्रुओंकी मन द्वारा उछलती हुई अनेकश तरंगों को दमन कर निस्तृष्णा और परम शान्त अपनी आत्मा को किया था और अपने कई बाह्य शत्रुओं को भी अपने परम भक्त बनाये थे, जब श्रमण भगवंत श्रीमन्महावीरदेव अपने पूर्व सचित कठिन कर्मोके नाश करनेके लिये मौनावस्था में अनार्य देशमें घुमते थे, उस समय उनकी निन्दा कदर्थना के उपरान्त कितनेक लोगोंने उनको हेरिक [चोर] की बुद्धिसे पकड कर बध बंधनमें डालने

तक की तैयारी की थी परन्तु उस अवस्थामें भी उस सत्वशाली भगवान् महावीरने मौनको न छोडा और अपने बचावके वास्ते एक भी शब्द उच्चारण न किया इसीसे उस महात्माका मौन भी प्रसिद्ध है सत्य ही है कि दिव्य शक्तिशाली महात्मा विपक्षियो के विपरीत आचरणो को उदारता पूर्वक सहते ही हैं इसीलिये कहते हैं कि "मौनं सर्वार्थसाधकम्" इसी वचन गुप्तिके अभावसे आज कल इस निन्दा राक्षसीके फंदेसे कौन मुक्त है? यदि कोई है तो शुद्ध अंत करण से तुम उसके पैरो में पडो उसे महान् व्यक्ति समझो और उसका अनुकरण करो प्रिय बंधुओ? इस दुर्गुणके भयंकर परिणामका कुछ भी ख्याल करते हो? यदि करते हो तो आजसे ही तुम्हारे हृदयमें से इस दुर्गुण को दूर करने की प्रतिज्ञा कर लो। इस परनिन्दा रूप विकराल भूतकी पडछायामें न आकर सर्वत्र सद्गुणो की गवेषणा करो और सद्गुणो के वातावरणमें तुम स्वयं सद्गुणी बनो! कुद रतकी तमाम वस्तुओ में गुण भरे हुवे हैं गुणग्राही पुरुष ही उन्हें गुणतया ग्रहण कर सकता है और उन्हीं को दुर्गुणी मनुष्य दुर्गुणतया ग्रहण करता है संसारमें सर्वत्र गुण और अवगुण भरा हुवा है तुम्हें जो पसंद हो सो ग्रहण करो किन्तु इतना याद रखो कि दुर्गुण में केवल कडवास है और सद्गुणमें अमृत से भी मधुर है। जैन शास्त्रों में वचन गुप्तिका रहस्य भी यही है और सत्पुरुष प्राय मित भाषी रहते हैं कितनेक महामुनि जिव्हा को दमन करनेके लिये बारह बारह वर्ष तक मौन रहते

है इसका अभाव ही हम लोगो के पतन कारण है इसलिये अब भी जागो—

गज़ल, ताल ३।

जागो न जैन बंधु जागा है देश सारा ॥ टेक ॥
करना समाज सेवा तुम हो भुलाये बैठे
अब मद हो रहा है पुरुषार्थ यों तुम्हारा, (१) जागो
हा हो रही है हानि तबसे समाज भरकी
कर्त्तव्य पथसे जबसे तुमने किया किनारा (२) जागो
निज स्वार्थमें न पड़ते परमार्थतामें अड़ते
तो उन्नतिमें होता जैनी समाज सारा (३) जागो
वीरत्व लेश तुममें कुच्छ भी नहीं रहा क्या ?
जो इस तहरसे तुमने हैं आज मौन धारा ॥ ४ ॥ जागो
निद्रासे अब तो जागो व्यसनोंको शीघ्र त्यागो
लो लक्ष्यमे उसीको है साध्य जो तुम्हारा ॥ ५ जागो
ऐ वीर पुत्र प्यारे ! यत्न करके धीर सारे
हिलमिलके अब करो तुम निज कौमका सुधारा ६ जागो
उपकार मय हृदय हो परदुःखमें सदय हो
निज धर्मका उदय हो ऐसा करो विचारा ॥ ७॥ जागो
साधर्मी जो तुम्हारे फिरते हैं मारे मारे
लाओ दया उन्हो पर तनधनसे देसहारा । ८ । जागो
सब भिन्न भाव छोडो मन ऐक्यतामें जोडो

होवेगा विश्व भरमें आदर तभी तुम्हारा ॥ ९ ॥ जागो
पुरुषार्थ कर दिखाओ कर्तव्य कर बताओ
ऐ जैन वीर पुत्रो ? करता हुँ मैं इशारा ॥ १० ॥ जागो

इस लिये प्यारे जैन बधुओं ? अब भी जागो ? जागो ? जागो ? और अपनेको सार्थक जैन बनाओ—और अपने छोटे छोटे ऊघडोंको दूर करो—अब प्रमादका समय नहीं है, परवा नहि सब तरहसे यदि मिल नही सकते हो ? किन्तु बाहर जैनोंका जहा नाम बदनाम होता हो—या जैन शासनकी अवनति होती हो वहा एक होकर जैनके नामपर मरनेको तैयार हो जाओ ? और समाजोन्नतिके लिये कटिबद्ध हो जाओ ? आज तुम्हारी समाज दिनप्रति दिन कितनी क्षीण होती चली है। एक तरफ विधवाओं कि संख्या दिन प्रति दिन बढ रही है तो एक तरफ बचपनमें ही बालकोमें कितने ही कुसंस्कारोके पड जानेसे देखते देखते कितनी बाल मरणकी भी सख्या बढती चली है। दूसरी तरफ कन्या विक्रयके बढ जानेसे जैनोंसे प्राय कारुण्य भावना भी नष्ट होती चलि है जिससे बहोतसे गरीब नवयुवक वर्ग अविवाहीत रह जाते हैं। जिससे उनका प्राय शील सयम शुद्ध न रहनेसे शिघ्र ही कालके मुखमें चले जाते हैं,—इधर वह कन्या अपने कुटुम्बको—व समाजको अनेकश श्राप देती अपने उस वृद्ध पतिके साथ घर जाते जाते वैधव्यावस्थाको पा जाती है उस स्थितिमें वही बाला प्रबल इन्द्रियोंके वेगमें पडी हुई कहातक शुद्ध रह सकती है। यदि कदाचित् कर्म संयोगसे उससे

अनुचित कार्य हो गया तो बताईये प्यारे दयालु भाईयों ? उस बिचारी युवतीकी या उस अनाथ गर्भकी क्या क्या विडम्बना न होगी ? और यह पाप कहांतक फैलेगा इसका भी कभी कुछ विचार किया है ? तब क्यों न जैनोंकी संख्या घटे ? ऐसी स्थितिके पोंचने पर भी समाज क्यों नहीं वृद्ध विवाहका रोकते हैं? व अपने बालकोंके पर अमन् आचरणपर लक्ष्य देते ? यदि इन दोनोंपर जैन समाज लक्ष्य देते तो आज इतनी प्रबल विधवाओं की संख्या दृष्टिगोचर न होती। यदि निष्कलंक शुद्ध ब्रह्मचर्यका प्रतिपालन हमारे बालकोंका होता तो यह बालमरणकी संख्या भी अधिक न दीख पडती व उतनी निर्बल प्रजा हो होती, ।

उस ब्रह्मचर्याश्रम नियमका ध्यान जबसे हट गया ।
सम्पूर्ण शारीरिक तथा वह मानसिक बल घट गया ॥
है हाय ? काहेके पुरुष हम जब कि पौरुष ही नहीं ।
नि शक्त पूतले भी भला पौरुष दिखा सकते कहीं ॥
यदि ब्रह्मचर्याश्रम मिटाकर शक्ति को खोते नहीं ।
तो आज दिन सब जातियोंमें गण्य हम होते नहीं ॥
करते नजा बिष्कार जैसे दूसरे हैं कर रहे
भरते यशो भाण्डार जैसे दूसरे हैं भर रहे ॥

एक तरफ तुम हाय पैसा ? हाय पसा ? कर इस पि शाचनी मायाके फंदेमें पडकर अपना सर्वस्व धर्म कर्म खो बैठे हो जरा सोचो ! ! कि तुम्हारी क्या दशा है ? अब भी नहीं सोचोगे तो क्या होनेवाली है ? तरह तरहके कलंक इस

जैन जातीपर लगाये जाते हैं। जो कि निर्मूल है? इस लिये उठो और कार्य करके बता दो कि अब जैन जाति झूठे दोषोको नहीं सहन कर सकती? अरे जिस धर्मके तुम हो उसी पवित्र धर्मका उपकार महात्मा गाधी 'व, तिलक जैसे माननीय देशनेता भी स्वीकार करते हैं। आज इस शासनका 'व, समाजका भार तुम्हारे पर है इसलिये बुद्धि पूर्वक कार्य नहीं किया तो सदाके लिये अपयशकी कालिमासे कलंकित ही बने रहोगे!

भारतका इतिहास भविष्यतमें यही जगतको दर्शायगा कि "अमुक शताब्दिमें जैनोंका सवथा अधःपतन ही होता रहा! उस समयके—जैनोमें अपने आत्म गौरवकी रक्षा करनेकी भी योग्यता न रही। परस्पर ईर्षा आदि दुर्गुणोंमें बहोत ही बढे बढे थे जिस शताब्दीमें समग्र भारतकी जातियोंमें घनिष्ठ प्रेमका प्रवाह प्रवाहित हो रहा था उस समय जैन जातीमें फूटका अटल साम्राज्य जम रहा था, एकताके विषयमें प्रयत्न न कर परस्पर एक एकके मानमर्दन करनेमें ही अपना सौभाग्य समझ रहे थे" इत्यादि जैन जातिके लिये स्थायी कलंक न हो इस लिये अब भी चेतो। संसार विनश्वर है केवल यश अपयश ही रह जाता है ससारमें उसीका मरण भी प्रशंसनीय है जिसने परमार्थके कार्योंमें अपने तन मन धन को भी अर्पण कर दिया हो किसी अंग्रेज कविका वचन है।

To every man upon this earth,
Death cometh soon or late,

Anb how can man die better,
than facing fearfull odds
For the ashes of his fathers
and the temples of his Gods

अपयशका व पापका मूल अभिमान है। यशका व, धर्म का मूल नम्रता है इसलिये नम्र बनो। अरा अन्य जातियोंपर भी लक्ष्य दो दुनियामें सब जातिवाले अपने अपने संघटनमें किस तरहसे लगे हैं संसारके परिवर्तनके साथ आज शुद्धि प्रकरणने भी जगतमें क्या ही अपूर्व काम किया है और कर रहा है कि जो जातियें थोड़े दिन पहले अस्पृश्य समझी जाती थी वेही स्पृश्य व, समान पदके योग्य होती चली है। दिन प्रति दिन भारतसे अस्पृश्य भावना नष्ट होती जा रही है। जो कि एक प्रकारसे भारतको कलंक था आज समय यह आ गया है कि मनुष्यको अस्पृश्य समझनेवाला ही अस्पृश्य समझा जा रहा है वस्तुत है भि ऐसा ही अस्तु वीर सन्तानों; यदि तुम अपनेको वस्तुत वीर सन्तान कहलानेके योग्य बनना चाहते हो। या संसारमें अपने आत्म गौरवको रक्षा करना उचित समझते हो या अपने धर्मको सार्वभौम बनाना चाहते हो या अपने समाजकी भलभलाट उन्नति चाहते हो, तो इसके लिये एक ऐसी संस्था कायम करो। जिसमें अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर, दिगंबर, स्थानकवासी तेरह पन्थी आदि समग्र जैनोका सम्मेलन हो इसके लिये सत्य मनसे प्रयत्न करो संघटन ही धर्म है भिन्नता

ही अधर्म है ऐसा दृढ सन्कल्प कर फूटके कारणोको नाश करो। सत्ताके मदसे मस्तलोग अपने स्वार्थवश अनेक बाधायें उपस्थित करेंगे किन्तु वीर नवयुवको! तुम कुछ भी उसकी परवाह न करो प्रत्युत तुम ऐसे नम्र बनो कि वे स्वयं अपनी अज्ञानतापर पश्चाताप करते हुवे तुम्हारे सहायक होवें किन्तु इसके पूर्व तुम उनको कभी भी तिरस्कारकी दृष्टीसे न देखो हमेशा उनका सत्कार करो तुम्हारा नम्र विनय गुण ही उनको तुम्हरा तावेदार बना देगा। और उस जगदुध्धारक परमात्मा वीर प्रभुके उन सत्य उपदेशोंके प्रचारार्थ सदा भगिरथ प्रयत्न करो और सब सम्प्रदायके जैनोंमेंसे अच्छे अच्छे प्रतिष्ठित विद्वान् बगकी उप-स्थितिमें सबमान्य एक ऐसी स्कीम बनाओ जिसको समग्र जैन जनता सहर्ष आदर कर उसको आचरणमें ला सके। इससे ही जैनोंके आत्म गौरवकी रक्षा होगी ऐसे सघटन ही सामाजिक धार्मिक, व्यावहारिक, और नैतिक भिन्नताके अन्त करनेवाले होते हैं यही उन्नतिका एक अमोघ उपाय है कि बहुता एक दिन फिर ऐसा लाओ कि भारतमें जैन शासनका दिग्-दिगंत व्यापी डंका बजें और यह कहावत चरितार्थ हो—कि—

कभी जैनियोंका राज था-यह मुल्कमें सिरताज था,
तुम्हें याद हो किन याद हो—
एक कविने कहा है,

धनदे तनको राखिये--तनदे रखिये लाज
धनदे तनदे लाजदे एक धर्मके काज ॥ १ ॥

वय सर्वे सतः प्रवरमतिमत सहृदया
विहायानेकत्वं यदि च समुदित्यैकवलत
समुद्दिष्ट चैक सरलमनसा साधितुमल
भवेम सज्जा किं न भवति तदा साध्यमखिलम्

अर्थात्—हम लोगोंमें अनेक सहृदय विद्वान् धनिक हैं केवल एकताका ही अभाव है यदि अनेकताको छोड कर एक सघटन शक्तिके साथ सबै दिल्से कार्य करे तो जगत्में ऐसा कौन कठिन कार्य है जिसको हम न कर सकें अर्थात् एकताके बल सब ही कार्य साध्य है।

गजल ।

जैनों जरा विचारो, कहता है क्या जमाना ?
जातीय प्रेम दिलसे, हरगिज न तुम भुलाना ॥ १ ॥ जैनो
रूढी जो हैं पुराना, करती समाज हानी
उनके प्रवाहमें अब, जीवनको न बहाना ॥ २ ॥ जैनो,
उपदेशकोंसे कह दो, हम हाथ जोडते हैं
सब भिन्न भावोंका कभी उपदेश ना सुनाना ३ जैनो,
सतान जो तुम्हारी फिरती है मारी मारी
शिक्षा उसे दिलाकर, अज्ञानसे बचाना ॥ ४ ॥ जैनो०
प्रभुवीरने कहा है, द्रव्यक्षेत्र काल भावा
उसको तो आज तुमने बिलकुल नहीं पिछाना ५ जैनो०

नि सत्य हो चुके हो, सर्वस्व खो चुके हो
अब देखकर समयको, वीरत्व तो बताना ॥ ६ ॥ जैनो०
मन ऐक्यभाव धारो, और भिन्नता विसारो
निज कौमको सुधारो, दे करके ज्ञान दाना ॥ ७ ॥ जै०

अस्तु, इसके लिये एक चातुर्मास ही उत्तम समय है जिसमें पूज्य मुनिवर्यों की 'व, श्रावकोंकी भी अच्छी उपस्थिति रहती है इस उत्तम संघ सम्मेलनके प्रसंगमें पूर्वोक्त स्थितिपर विचारकर यदि स्थान स्थानके जैन सन्घने यथा शक्य प्रयत्न किया 'व, इस तरहसे प्रतिवर्ष चातुर्मास 'व, पर्यूषणाराधन होते रहें तो निश्चय समझो कि ये सब विपत्तियें शिघ्र ही विलयमान होगी और जैनोंका संसारमें शिघ्र ही झलझलाट अभ्युदय होगा इसके लिये शासनदेव वीरशासनके उत्सा ही वीर नवयुवकोंको सद्-बुद्धि दो यही हार्दिक प्रार्थना पूर्वक इस लेखकी पूर्णाहुति करता हूँ ।

ॐ शान्ति शान्ति ।

जैन शासनका परम उपासक—
काशी निवासी,
जैन, भिक्षु यति हीराचन्द्र ।